

B.A. 3RD YEAR THIRD PAPER

प्रथम भाग में

1. इसमें श्रीमद् भगवद्गीता का दूसरे और बारहवें अध्याय का हिन्दी अनुवाद एवं व्याख्या

द्वितीय भाग में

2. ईशावास्योपनिषद् की विस्तृत व्याख्या

तृतीय भाग में

3. भारतीय दर्शन के अन्तर्गत सांख्य योग अद्वैते वेदान्त तथा दर्शन का सामान्य परिचय

चतुर्थ भाग में

4. तर्क संग्रह— प्रारम्भ से प्रत्यक्ष खण्ड तक

पंचम भाग में

5. भारतीय संस्कृति— संस्कृति का स्वरूप, वर्णाश्रम व्यवस्था संस्कार, पुरुषार्थ चतुष्टय

षष्ठ भाग में

6. संस्कृत साहित्य का इतिहास— महाकाव्य, नाटक, एवं गीतिकाव्य का सामान्य परिचय पाठ्य क्रम में है।

श्रीमद् भगवद् गीता

तृतीय प्रश्नपत्र के पाठ्यक्रम में भगवद्गीता के दो अध्याय हैं दूसरा अध्याय एवं बारहवां अध्यायविश्व साहित्य में श्रीमद्भगवद् गीता का अद्वितीय स्थान है। यह साक्षात् भगवान के श्रीमुख से निःसृत परम रहस्यमयी, दिव्य वाणी है। इसमें अर्जुन को निर्मित बना के, भगवान ने स्वयं मानवमात्र के कल्याण के लिये, उपदेश दिया है। श्रीमद् भगवद्गीता की महिमा अगाध एवं असीम है। यह भगवद्गीता प्रस्थानत्रय में एक माना जाता है। मनुष्य मात्र के उद्धार के लिये, तीन राजमार्ग, प्रस्थानत्रय नाम से, जाने जाते हैं। वैदिक प्रस्थान है जिसको उपनिषद् कहते हैं और एक दार्शनिक प्रस्थान है जिसे ब्रह्मसूत्र कहते हैं। उपनिषदों में मन्त्र हैं, ब्रह्मसूत्र में सूत्र हैं और भगवद्गीता में श्लोक हैं।

प्रत्येक दर्शन के अलग-2 अधिकारी होते हैं, परन्तु गीता की ये विशेषता है, कि किसी वर्ण, आश्रम, देश, सम्प्रदाय आदि का कोई भी मनुष्य हो, अपना उद्धार चाहने वाले, सब के सब इसके अधिकारी हैं।

गीता के द्वितीय अध्याय में शरणागत अर्जुन के, द्वारा अपने शोक की निवृत्ति का, उपाय पूछे जाने पर, 30 श्लोक तक, आत्मतत्त्व का वर्णन किया गया है। सांख्य योग के साधन में, आत्मतत्त्व का श्रवण, मनन, तथा निदिध्यासन ही मुख्य हैं। अतः इस अध्याय का नाम, सांख्य योग रखा गया है।

दूसरे अध्याय का संक्षिप्त विवरण— इस प्रकार है।

इस अध्याय के पहले श्लोक में, संजय ने अर्जुन के विषाद का वर्णन किया है, दूसरे और तीसरे में, भगवान् कृष्ण ने, अर्जुन के मोह और कायरता युक्त, विषाद की निन्दा करते हुए उन्हें युद्ध के लिये, उत्साहित किया है, चौथे और पाँचवें में, अर्जुन ने, भीष्म द्रोण आदि पूज्य गुरुजनों को, मारने की अपेक्षा, भिक्षान्न के द्वारा, निर्वाह करना श्रेष्ठ बताया है। छठे में, युद्ध करने या न करने के विषय में, सन्देह करके सातवें में मोह और कायरता के दोष का वर्णन करते हुए, भगवान के शरण होकर, उनसे, कल्याण प्रद उपदेश करने के लिये, प्रार्थना की, और आठवें में त्रिलोको के, निष्कण्टक राज्य को भी, शोकनिवृत्ति में कारण न मानकर, वैराग्य का भाव प्रदर्शित किया है। नवें और दसवें में संजय के मुस्करा कर बोलने की बात कही है।

तदनन्तर, ग्यारहवें से भगवान् ने, उपदेश का आरम्भ करके, बारहवें और तेरहवें में आत्मा की नित्यता का निरूपण करते हुए, चौदहवें में समस्त भोगों को अनित्य बनाकर, सुख दुःख आदि हन्तों को सहन करने के लिये कहा है। और पन्द्रहवें में उस सहनशीलता को मोक्षप्राप्ति में, हेतु बताया है। सोलहवें सत्रहवें अठारहवें में सत् असत् का लक्षण बताते हुए, युद्ध करने की, आज्ञा दी है। उन्नीसवें, बीसवें और इक्कीसवें में जन्मादि, छः विकारों से रहित आत्मा स्वरूप का, निरूपण करते हुए, आत्मतत्त्व का ज्ञाता, किसी को मारने, व मरवाने वाला नहीं बनता यह बताया है।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्य शाश्वतोयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

तदनन्तर बाइसवे में, मनुष्य के कपड़े बदलने की तरह, जीर्ण शरीर बदलने का, उदाहरण देते हुए, शरीरान्तर प्राप्ति का तत्व समझाकर, तेइसवे से पच्चीसवे तक आत्मतत्व को, अच्छेरा, अदाइयु अक्तेरा, अशाष्य अचल सनातन, अचिन्त्य, निर्विकार बताकर, शोक करना अनुचित सिद्ध किया है। छब्बीसवे से तीसवे तक, शरीरो की अनित्यता के कारण, शोक को अनुचित बतलाया है। इकतीसवे से सैंतीस श्लोक तक, छात्र धर्म की दृष्टि से, अर्जुन को युद्ध करने की आज्ञा दी है। अडतीसवे से चवालिसवे श्लोक तक, कर्मयोग की महिमा बताते हुए, स्वर्ग परायण, सकाम मनुष्यों के स्वभाव का, वर्णन किया है। इकतालिसवे से चवालिसवे श्लोक में, स्वर्गपरायण, सकाम मनुष्यों के, स्वभाव का वर्णन है। पैंतालिसवे श्लोक में अर्जुन को निष्काय, निर्द्वन्द्व, नित्यसत्वस्थ योग क्षेम को न चाहने वाले, आत्मसंयमी होने की बात कइ कर छियालिसवे में जलाशय के दृष्टान्त से ब्रह्मज्ञान की महिमा का वर्णन किया है, सैंतालिसवे में फलासवित को त्यागकर कर्म करने के लिये कइ है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतु मूमा ते सङ्गोऽस्त्व कर्मणि।।

अडतालिसवे में आसवित को त्याग कर, समत्व बुद्धि से, कर्म करने की आज्ञा, उन्चासवे से इक्यावनवे तक, सकाय कर्मों की निन्दा, निष्काम कर्म योग के लिये आज्ञा, तथा कर्मफल का त्याग करने से परमपद प्राप्ति का, कथन किया है। बावनवे तिरपनवे श्लोक में, बुद्धि की स्थिरता से, योग की प्राप्ति, चौवनवे में अर्जुन ने स्थिरबुद्धि पुरुष के विषय में, चार प्रश्न करे है। पचपनवे से अठावनवे तक, समस्त उद्विग्न न होना, सुखो में स्पर्धा न करना, राग, भोग कोध का सर्वथा अभाव, शुभान्य की प्राप्ति में, हर्ष शोक और राग द्वेष का न होना, सब इन्द्रियो का यथाकाम वश में रखना, स्थिर पुरुष के लक्षणों का वर्णन किया है। उनसठवे में, इठ पूर्वक भोगो का त्याग करने से, आसावित की निवृत्ति नहीं होती, अपितु परमात्मदर्शन से होती है साठवे में इन्द्रियो की प्रबलता का निरूपण, इकसठवे में इन्द्रियो को वश में करके भगवत् परायण होने की प्रेरणा, बासठवे तिरसठवे में, विषय चिन्तन से, पतन का कम बताकर, चौसठवे पैंसठवे में, रागद्वेष रिहत होकर, कर्म करने वाले की, बुद्धि स्थिर हो जाने की बात कही है। छायठवे में साधन रहित पुरुष में, सुख का अभाव दिखाकर, सरसठवे में वायु और नौका के दृष्टान्त से, वश में न की हुई, इन्द्रियो द्वारा बुद्धि के हरण का कथन, अडसठवे में स्थिर बुद्धि पुरुष में, इन्द्रियो के निग्रह की प्रधानता, उनहत्तरवे में अज्ञानियो के लिये, ब्रह्मानन्द, रात्रि के समान, तत्व वन्तो योगी के लिये विषय सुख को रात्रि के समान बताकर, सत्तरवे में निष्कामी पुरुष की, महिमा इकहत्तरवे में समस्त कामना, स्पृहा, ममता के त्याग से, परमशान्ति की प्राप्ति, तथा बहत्तरवे श्लोक में ब्राह्मी स्थिति की महिमा बताकर अध्याय का उपसंहार किया है।

बारहवे अध्याय में, अनेक प्रकार के साधनों सहित, भगवान की, भक्ति का वर्णन करके, भगवद्भक्तो के लक्षण बतलाये गये है। साकार निराकार के उपासको में, कौन श्रेष्ठ है, अर्जुन के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए, भगवान ने सगुण रूप की उपासना करने वालो की, श्रेष्ठता का वर्णन करते हुए, निराकार की उपासना में कठिनता का कथन किया है। ध्यान से, अभ्यासयोग से, भगवान् के लिये कर्म करने से, सभी कर्मों के फलत्याग से, भगवत्प्राप्ति बताई है। तथा प्रिय भक्त के वन्या लक्षण है, इसका कथन किया है। इस अध्याय का, उपक्रम एवं उपसंहार, भगवान् की भक्ति में ही हुआ है, अतः इस अध्याय का नाम, भक्तियोग रखा गया है।

ईशावास्योपनिषद्

जिस प्रकार यह चराचर जगत् अनादि काल से, चला आ रहा है, उसी प्रकार वेद वाङ्मय अनादि एवं अपौरुषेय है। कहा जाता है, ऋषयः मन्त्र दृष्टारः ऋषियो ने ब्रह्माण्ड में मन्त्रों के दर्शन किये थे। वेद के शीर्ष स्थानीय भाग का नाम वेदान्त है। इसको मूल आधार, ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या माना गया है। भाव यह है, कि, वेदान्त ही ब्रह्मविद्या है, तथा ब्रह्मविद्या के द्वारा ही, अज्ञान की गन्धिया कटती है, तथा मिथ्या अनुभूति का, विनाश होकर, परमानन्द, सत्यस्वरूप की उपलब्धि होती है।

इस ब्रह्मविद्या का प्रतिपादन वेद के जिस सर्वोच्च शिरोमार्ग में, विद्यमान है, उसी का नाम उपनिषद् है। इन्हीं उपनिषदों के मन्त्रों का, समन्वय, महर्षि वेदव्यास ने ब्रह्मसूत्र में किया है। परन्तु अद्वैत वेदान्त का प्रतिपादन करने वाले प्रवर्तकों में शंकराचार्य का नाम सर्वोपरि है। इस मत में ब्रह्म, माया, ईश्वर, जीव जगत् आदि पर विचार किया जाता है। आचार्य शंकर के अनुसार, ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या।

प्रमुख उपनिषद् 12 हैं, जिनके नाम हैं— ईशावास्योपनिषद्, केन, कठ, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, कौषीतिकी, श्वेताश्वतर।

ईशावास्योपनिषद् शुक्ल यजुर्वेद की, माध्यान्देन संहिता के, अन्तिम चालीसवें अध्याय का नाम है। प्रथम मन्त्र ईशावास्यम् से प्रारम्भ होने के कारण, इसका नाम ईशावास्योपनिषद् हुआ।

जैसा पहले ही हमने बताया वैदिक धर्म के मूल तत्व की प्रतिपादिका, प्रस्थानत्रयी स्वीकार की जाती है जिसके अन्तर्गत उपनिषद् गीता, एवं ब्रह्मसूत्र आते हैं। इसमें सर्वोपरि उपनिषद् ही आते हैं। क्योंकि गीता और ब्रह्मसूत्र की आधारशीला उपनिषद् ही है। —जैसा कहा गया है

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धागोपाल नन्दनः।

पार्थोवत्सः सुधीर्माक्ता दुग्धं गीतामृतमहत् ॥

अर्थात्, समस्त उपनिषद् धेनुरूप हैं, वत्सरूप पार्थ के लिये भगवान् कृष्ण ने सुधा सहोदर, अमृतस्वरूप, वैचारिक दुग्ध दुहकर, समाज को अर्पित किया है।

ब्रह्मविद्या पर, संक्षिप्त रूप में, अत्यधिक प्रभावशाली भाषा में, प्रकाश डालने वाला ईशावास्योपनिषद् के समान उपनिषद् ग्रन्थ नहीं है। इसीलिये समग्र उपनिषद् साहित्य में, इसका प्रमुख स्थान है। इस उपनिषद् में ज्ञान की व्यापक महत्ता का प्रतिपादन करते हुए, यह स्पष्ट किया गया है, कि अखिल ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी चराचर, या स्थावर जगत् आदि जगत् है, उसमें, उस परब्रह्म निराकार, सर्वाधार, सर्वाधिपति, जगनियन्ता, परमेश्वर की ही सत्ता व्याप्त है।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥

इस मन्त्र में, अखिल भूमण्डल में व्याप्त चराचर जगत् के, प्राणियों के प्रति, वेदभगवान् का गूढ़, व्यापक एवं पवित्र, सन्देश है कि इस ब्रह्माण्ड में, जो कुछ भी, यह जड़ चेतन स्वरूप चराचर जगत्, दृष्टिगोचर हो रहा है, वह सब सर्वाधार, निर्विकार सर्वाधिपति, सर्वशक्तिमान्, उस परब्रह्म परमात्मा से

सर्वतः व्याप्त है। इस प्रकार उस परब्रह्म परमात्मा की, असीम व्यापकता को, हृदयंगम करते हुए, उस सर्वाधिपति, निर्विकार, परब्रह्म को, निरन्तर अपने साथ रखते हुए, इस चराचर जगत् में, पूर्ण त्याग की भावना से, केवल कर्तव्यपालन के लिये ही, विषयो एवं भोग्य पदार्थों का, यथाविधि उपभोग करो। विषय वासना आदि में, अपने चंचल मन को मत फसने दो, इसी में तुम्हारा, इदलौकिक एवं पारलौकिक कल्याण है।

वास्तव में, ये भोग्य पदार्थ क्षण भंगुर हैं, इसीलिये उस परब्रह्म परमात्मा को अपने अन्तस्तल में, रखते हुए त्याग पूर्वक इस सांसारिक पदार्थों का भोग करो, इसमें आसक्त मत हो, क्योंकि यह भोग पदार्थ किसी का भी नहीं है।

मनुष्य क्षणिक लिप्सा में उन्मत्त होकर, अज्ञानवश, इनमें ममता, मोह में, आसक्ति, कर बैठता है किन्तु गंभीर दृष्टि से विचार किया जाए, तो ये सभी पदार्थ उस परब्रह्म परमात्मा के निमित्त हैं, और उनका त्यागपूर्वक ही उपयोग होना चाहिये। ऐसा करने पर ही मनुष्य की जीवन यात्रा, सुखद होगी क्योंकि ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या।



भारतीय संस्कृति

संस्कृति का स्वरूप— सम उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से वितन् प्रत्यय लगाने से संस्कृति शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है— सुधरी हुई स्थिति या संस्कार की हुई स्थिति संस्कृति का अभिप्राय, उन समस्त मानवीय विचारों, चेष्टाओं, कर्मों आदि से है जो, मानव के आध्यात्मिक, लौकिक, तथा सामाजिक किया कलापों के कारण, परम्परा का रूप धारण कर लेते हैं।

संस्कृति समाज की वह आधारशिला है, जिसके आश्रय से, जाति, समाज, व देश का विशाल भव्य प्रासाद, निर्मित होता है।

वर्णाश्रम व्यवस्था— प्राचीन भारतीय संस्कृति में चार वर्ण प्रचलित थे— ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। वर्ण व्यवस्था का संकेत ऋग्वेद के दशम मण्डल के पुरुषसूक्त में इस मन्त्र से मिलता है—

ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्, बाहू राजस्यः कृतः।

उरु तदस्य यद्वैश्यः, पदम्या शूद्रोजायतः ॥

वेदों में जिस विराट पुरुष का वर्णन किया गया है उसके मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जंघाओं से वैश्य तथा पैरों से शूद्र का जन्म हुआ। इस सम्बन्ध में गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।

ब्राह्मण— भारतीय समाज में ब्राह्मणों को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। वेदों का अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ करना, यम नियम के द्वारा आत्मविकास के साथ—2 समाज का विकास तथा समाज के सामने, अच्छा आदर्श उपस्थित करना, उनका मुख्य उद्देश्य था।

क्षत्रिय— तत्कालीन समाज तथा राष्ट्र की सुरक्षा इनका प्रमुख कर्तव्य था। साथ ही वेदोध्ययन यज्ञ दान आदि भी इनके कर्तव्य थे।

वैश्य— समाज के भरण पोषण का भार, वैश्यों को वहन करना पड़ता था। समाज की आर्थिक, सम्पत्ति का विकास करते हुए, निस्वार्थ भाव से, राष्ट्र की सेवा करना, वैश्य का कर्तव्य था। वैश्य भी अध्ययन यज्ञ दान करते थे।

शूद्र— समाज के तीनों वर्णों की सेवा करना शूद्र का कर्तव्य था।

आश्रम व्यवस्था

मानव जीवन की, नैतिक अभिवृद्धि, कर्म निष्ठा, आध्यात्मिक विकास, तथा पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति के लिये, भारतीय संस्कृति में आश्रम व्यवस्था का, महत्वपूर्ण स्थान था। आश्रम व्यवस्था के प्रथम भाग में ज्ञानार्जन, द्वितीय भाग में अर्थ और काम का अर्जुन, तृतीय भाग में, धर्ममूलक मोक्ष की तैयारी तथा चतुर्थ भाग में मुमुक्षु बनकर आध्यात्म साधना की तैयारी थी। मनुष्य की 100 वर्ष की आयु भी चार भागों में थी।

- 1- ब्रह्मचर्य आश्रम 25 वर्ष
- 2- गृहस्थ आश्रम 26 से 50 वर्ष
- 3- वानप्रस्थ आश्रम 50 से 75 वर्ष
- 4- सन्यास आश्रम 75 से 100 वर्ष

ब्रह्मचर्य आश्रम- विद्या और शक्ति के उपार्जन के लिये ब्रह्मचर्य का होना अत्यावश्यक है अतः इस परमपुनीत आश्रम में यज्ञोपवीत संस्कार के उपरान्त, बालक गुरुकुल में जाकर ब्रह्मचर्य व्रत धारण करता था। उसका प्रमुख कर्तव्य, वेदाध्ययन होता था। वे प्रातः सायं, समिधा लाते थे दोनों समय संध्योपासना करते थे स्नानोपरान्त देव ऋषियों का तर्पण, देवताओं का पूजन अर्चन, तथा प्रातः सायं यज्ञ भी करते थे। इस आश्रम में ब्रह्मचारी, अपनी विभिन्न आलिक शक्तियों का विकास करते थे।

गृहस्थाश्रम- भौतिक दृष्टि से, गृहस्थाश्रम अत्यधिक महत्वपूर्ण माना गया है। क्योंकि शेष तीन आश्रमों का अस्तित्व भी, इसी आश्रम पर निर्भर रहता है। वेदाध्ययन के उपरान्त, ब्रह्मचारी स्नातक बनकर, गुरु की आज्ञा प्राप्त कर, समान वर्णवाली, सुलक्षणा कन्या से विवाह करके, गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था।

पंच यज्ञ- ऋषि यज्ञ, देव यज्ञ, पितृ यज्ञ, भूत यज्ञ, नृयज्ञ के साथ, वेदों का अध्ययन, परिवार के पालन पोषण के लिये धनोपार्जन, सन्तानोत्पत्ति तथा दान, इस आश्रम के मुख्य कर्तव्य थे।

सर्वेषामपि चैतेषा वेद स्मृति विद्यानतः
 गृहस्थ उच्चयते श्रेष्ठ स त्रीनेतान्विमर्ति हि।
 यथा नदीनन्दा सर्वे सागरे याति संस्थितिम्
 तथैवाश्रमिण सर्वे गृहस्थे याति संस्थितिम्॥

वानप्रस्थ- गृहस्थाश्रम में रहते हुए, जब पुत्र के पुत्र हो जाए, तब वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करने का विधान है। सभी ढाट बाट त्याग कर, दारिद्र्य, विन्तेषणा, और लोकेषणा को छोड़ने के लिये, वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार किया जाता है।

सन्यास आश्रम- वानप्रस्थ आश्रम में, सम्यक आत्मविकास करने के पश्चात्, सन्यास आश्रम में प्रवेश किया जाता है। सब कुछ त्यागकर कर्म जन्य दोषों को, प्राणायाम से नष्ट करता हुआ, जितेन्द्रिय होकर, स्थिर बुद्धि वाला, निरन्तर ब्रह्म में लीन रहने वाला सन्यासी, कमला: मोक्ष को प्राप्त होता है। ये चारों आश्रम कमला: परमगति को प्राप्त कराने वाले हैं।